जड़ें इस्मत चुग़ताई

सबके चेहरे उड़े हुए थे। घर में खाना तक न पका था। आज छठा दिन था। बच्चे स्कूल छोड़े, घर में बैठे, अपनी और सारे परिवार की जिंदगी बवाल किये दे रहे थे. वही मारपिताई, धौल धप्पा वही उधम, जैसे कि आया ही न हो. कमबख्तों को यह भी ध्यान नहीं कि अँग्रेज चले गये और जाते जाते ऐसा गहरा घाव मार गये जो वर्षों रिसता रहेगा. भारतपर अत्याचार कुछ ऐसे क्रूर हाथों और शस्त्रों से हुआ है कि हजारों धमनियाँ कट गयीं हैं, खून की नदियाँ बह रहीं हैं. किसी में इतनी शक्ति नहीं कि टाँका लगा सके।
कुछ दिनों से शहर का वातावरण ऐसा गन्दा हो रहा था कि शहर के सारे मुसलमान एक तरह से नंजरबन्द बैठे थे। घरों में ताले पड़े थे और बाहर पुलिस का पहरा था। और इस तरह कलेजे के टुकड़ों को, सीने पर मूँग दलने के लिए छोड़ दिया गया था। वैसे सिविल लाइंस में अमन ही था, जैसा कि होता है। ये तो गन्दगी वहीं अधिक उछलती है, जहाँ ये बच्चे होते हैं। जहाँ गरीबी होती है वहीं अज्ञानता के घोड़े पर धर्म के ढेर बजबजाते हैं। और ये ढेर कुरेदे जा चुके हैं। ऊपर से पंजाब से आनेवालों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही थी जिससे अल्पसंख्यकों के दिलों में ख़ौफ बढ़ता ही जा रहा था। गन्दगी के ढेर तेजी से कुरेदे जा रहे थे और दुर्गन्ध रेंगती-रेंगती साफ-सुथरी सड़कों पर पहुँच चुकी थी।
दो स्थानों पर तो खुला प्रदर्शन भी हुआ। लेकिन मारवाड़ राज्य के हिन्दू और मुसलमान इस प्रकार एक-दूसरे के समान हैं कि इन्हें नाम, चेहरे या कपड़े से भी बाहर वाले बड़ी मुश्किल से पहचान सकते हैं। बाहर वाले अल्पसंख्यक लोग जो आसानी से पहचाने जा सकते थे, वो तो पन्द्रह अगस्त की महक पाकर ही पाकिस्तान की सीमाओं से खिसक गये थे। बच गये राज्य के पुराने निवासी, तो उनमें ना तो इतनी समझ थी और ना ही इनकी इतनी हैसियत थी कि पाकिस्तान और भारत की समस्या इन्हें कोई बैठकर समझाता। जिन्हें समझना था, वह समझ चुके थे और वह

सुरक्षित भी हो चुके थे। शेष जो ये सुनकर गये थे, कि चार आने का गेहँ और चार आने की हाथ भर लम्बी रोटी मिलती है, वो लूट रहे थे। क्योंकि वहाँ जाकर उन्हें यह भी पता चला कि चार सेर का गेहँ खरीदने के लिए एक रुपये की भी ंजरूरत होती है। और हाथ भर लम्बी रोटी के लिए पूरी चवन्नी देनी पड़ती है। और ये रुपया, अठन्नियाँ न किसी दुकान में मिलीं न ही खेतों में उगीं। इन्हें प्राप्त करना इतना ही कठिन था जितना जीवित रहने के लिए भाग-दौड़।
जब खुल्लमखुल्ला इलाकों से अल्पसंख्यकों को निकालने का निर्णय लिया गया तो बड़ी कठिनाई सामने आयी। ठाकुरों ने सांफ कह दिया कि साहब जनता ऐसी गुँथी-मिली रहती है कि मुसलमानों को चुनकर निकालने के लिए स्टांफ की ंजरूरत है। जो कि एक फालतू खर्च है। वैसे आप अगर जमीन का कोई टुकड़ा शरणार्थियों के लिए खरीदना चाहें तो वो खाली कराए जा सकते हैं। जानवर तो रहते ही हैं। जब कहिए जंगल साफ करवा दिया जाए।
अब शेष रह गये कुछ गिने-चुने परिवार जो या तो महाराजा के चेले-चपाटे में से थे और जिनके जाने का सवाल ही कहाँ। और जो जाने को तुले बैठे थे उनके बिस्तर बँध रहे थे। हमारा परिवार भी उसी श्रेणी में आता था। जल्दी न थी। मगर इन्होंने तो आकर बौखला ही दिया। फिर भी किसी ने अधिक महत्त्व नहीं दिया। वह तो किसी के कान पर जूँ तक न रेंगती और वर्षों सामान न बँधता जो अल्लाह भला करे छब्बा मियाँ का, वो पैंतरा न चलते। बड़े भाई तो जाने ही वाले थे, कह-कहकर हार गये थे तो मियाँ छब्बा ने क्या किया कि स्कूल की दीवार पर 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' लिखने का फैसला कर लिया। रूपचन्द जी के बच्चों ने इसका विरोध किया और उसकी जगह 'अखंड भारत' लिख दिया। निष्कर्ष ये कि चल गया जूता और एक-दूसरे को धरती से मिटा देने का वचन। बात बढ़ गयी। यहाँ तक कि पुलिस आ गयी और जो कुछ गिनती के मुसलमान बचे थे उन्हें लॉरी में भरकर घरों में भिजवा दिया गया।
अब सुनिये, कि ज्योंही बच्चे घर में आये, हमेशा हैंजा, महामारी के हवाले करनेवाली माएँ ममता से बेकरार होकर दौड़ीं और कलेजे से लगा लिया। और कोई दिन ऐसा भी

होता कि रूपचन्द जी के बच्चों से छब्बा लड़कर आता तो दुल्हन भाभी उसकी वह जूतियों से मरहम-पट्टी करतीं कि तौबा भली और उठाकर इन्हें रूपचन्द के पास भेज दिया जाता कि पिलाएँ उसे अरंडी का तेल और कोनेन का मिश्रण, क्योंकि रूपचन्द जी हमारे खानदानी डाक्टर ही नहीं,अब्बा के पुराने दोस्त भी थे। डाक्टर साहब की दोस्ती अब्बा से, इनके बेटों की भाइयों से, बहुओं की हमारी भावजों से, और नई पौध की नई पौध से आपस में दाँतकाटी दोस्ती थी। दोनों परिवार की वर्तमान तीन पीढ़ियाँ एक-दूसरे से ऐसी घुली-मिली थीं कि कोई सोच भी नहीं सकता था कि भारत के बँटवारे के बाद इस प्रेम में दरार पड़ जाएगी। जबकि दोनों परिवारों में मुस्लिम लीगी, काँग्रेसी और महासभाई मौजूद थे। धार्मिक और राजनीतिक वाद-विवाद भी जमकर होता था मगर ऐसे ही जैसे फुटबॉल या क्रिकेट मैच होता है। इधर अब्बा काँग्रेसी थे तो उधर डॉक्टर साहब और बड़े भाई लीगी थे तो उधर ज्ञानचन्द महासभाई, इधर मँझले भाई कम्युनिस्ट थे तो उधर गुलाबचन्द सोशलिस्ट और फिर इसी हिसाब से मर्दों की पत्नियाँ और बच्चे भी इसी पार्टी के थे। आमतौर पर जब बहस-मुबाहिसा होता तो काँग्रेस का पलड़ा हमेशा भारी रहता, कम्युनिस्ट और सोशलिस्ट गालियाँ खाते मगर काँग्रेस ही में घुस पड़ते। बच जाते महासभाई और लीगी। ये दोनों हमेशा साथ देते वैसे वह एक-दूसरे के दुश्मन होते, फिर भी दोनों मिलकर काँग्रेस पर हमला करते।
लेकिन इधर कुछ साल से मुस्लिम लीग का जोर बढ़ता जा रहा था और दूसरी ओर महासभा का। काँग्रेस का तो बिलकुल पटरा हो गया। बड़े भाई की देख-रेख में घर की सारी पौध केवल दो-एक पक्षपात रहित काँग्रेसियों को छोड़कर नेशनल गार्ड की तरह डट गयी। इधर ज्ञानचन्द की सरदारी में सेवक संघ का छोटा-सा दल डट गया। मगर प्रेम वही रहा पहले जैसा।
"अपने लल्लू की शादी तो मुन्नी ही से करूँगा।" महासभाई ज्ञानचन्द के लीगी पिता से कहते, "सोने के पाजेब लाऊँगा।"
"यार मुलम्मे की न ठोक देना।" अर्थात् बड़े भाई ज्ञानचन्द की साहूकारी पर हमला करते हैं।

और इधर नेशनल गार्ड दीवारों पर, "पाकिस्तान जिन्दाबाद" लिख देते और सेवक संघ का दल इसे बिगाड़ कर 'अखंड भारत' लिख देता। यह उस समय की घटना है जब पाकिस्तान का लेन-देन एक हँसने-हँसाने की बात थी।

अब्बा और रूपचन्द यह सब कुछ सुनते और मुस्कुराते और फिर सबको एक बनाने के इरादे बाँधने लगते।

अम्मा और चाची राजनीति से दूर धनिये, हल्दी और बेटियों के जहेजों की बातें किया करतीं और बहुएँ एक-दूसरे के फैशन चुराने की ताक में लगी रहतीं, नमक-मिर्च के साथ-साथ डॉक्टर साहब के यहाँ से दवाएँ भी मँगवायी जातीं। हर दिन किसी को छींक आयी और वह दौड़ा डाक्टर साहब के पास या जहाँ कोई बीमार हुआ और अम्मा ने दाल भरी रोटी बनवानी शुरू की और डाक्टर साहब को कहला भेजा कि खाना हो तो आ जाएँ। अब डाक्टर साहब अपने पोतों का हाथ पकड़े आ पहुँचे।

चलते वक्त पत्नी कहतीं, "खाना मत खाना सुना।"

"हँ तो फिर फीस कैसे वसूल करूँ देखो जी लाला और चुन्नी को भेज देना।"

"हाय राम तुम्हें तो लाज भी नहीं आती" चाची बड़बड़ातीं। मजा तो तब आता जब कभी अम्मा की तबीयत खराब होती और अम्मा काँप जातीं।

"ना भई ना मैं इस जोकर से इलाज नहीं करवाऊँगी।" मगर घर के डाक्टर को छोड़कर शहर से कौन बुलाने जाता। डाक्टर साहब बुलाते ही दौड़े चले आते, "अकेले-अकेले पुलाव उड़ाओगी तो बीमार पड़ोगी।" वह चिल्लाते।

"जैसे तुम खाओ हो वैसा औरों को समझते हो"अम्मा पर्दे के पीछे से भिनभिनातीं।

"अरे ये बीमारी का तो बहाना है भई, तुम वैसे ही कहला भेजा करो, मैं आ जाएा करूँगा। ये ढोंग काहे को रचती हो।" वो आँखों में शरारत जमाकर मुस्कुराते और अम्मा जल कर हाथ खींच लेती और बातें सुनातीं। अब्बा मुस्कुरा कर रह जाते।

एक मरीज को देखने आते तो घर के सारे रोगी खड़े हो जाते। कोई अपना पेट लिये चला आ रहा है तो किसी का फोड़ा छिल गया। किसी का कान पक गया है तो किसी की नाक फूली पड़ी है।

"क्या मुसीबत है डिप्टी साहब! एकाध को जहर दे दूँगा। क्या मुझे 'सलोतरी' समझ रखा है कि दुनिया भर के जानवर टूट पड़े।" वह रोगियों को देखते जाते और मुस्कुराते।
और जहाँ कोई नया बच्चा जनमने वाला होता तो वह कहते
"मुंफ्त का डाक्टर है पैदा किए जाओ कमबख्त के सीने पर कोदो दलने के लिए।"
मगर ज्योंही दर्द शुरू होता, वह अपने बरामदे से हमारे बरामदे का चक्कर काटने लगते। चीख चिंघाड़ से सबको बौखला देते। मौहल्ले-टोले वालों का आना तक मुश्किल।
पर ज्योंही बच्चे की पहली आवांज इनके कानों में पहुँचती वह बरामदे से दरवाजा, दरवाजे से कमरे के अन्दर आ जाते और इनके साथ अब्बा भी बावले होकर आ जाते। औरतें कोसती-पीटती पर्दे में हो जातीं। बच्चे की नाड़ी देखकर वह उसकी माँ की पीठ ठोकते 'वाह मेरी शेरनी', और बच्चे का नाल काटकर उसे नहलाना शुरू कर देते। अब्बा घबरा-घबराकर फूहड़ नर्स का काम करते। फिर अम्मा चिल्लाना शुरू कर देतीं, "लो गजब खुदा का ये मर्द हैं कि जच्चा घर में पिले पड़ते हैं।"
परिस्थिति को भाँप कर दोनों डाँट खाए हुए बच्चे की तरह बाहर भागते।
अब फिर अब्बा के ऊपर जब फालिज का हमला हुआ तो रूपचन्द जी अस्पताल से रिटायर हो चुके थे और इनकी सारी प्रैक्टिस इनके और हमारे घर तक ही सीमित रह गयी थी। इलाज तो और भी कई डाक्टर कर रहे थे मगर नर्स के और अम्मा के साथ डाक्टर साहब ही जागते, और जिस समय से वह अब्बा को दंफना कर आये, खानदानी प्रेम के इलावा इन्हें जिम्मेदारी का भी एहसास हो गया। बच्चों की फीस माफ कराने स्कूल दौड़े जाते। लड़कियों-बालियों के दहेज के लिए ज्ञानचन्द की वाणी बन्द रखते। घर का कोई भी विशेष कार्य बिना डॉक्टर साहब की राय के न होता। पश्चिमी कोने को तुड़वाकर जब दो कमरे बढ़ाने का प्रश्न उठा तो डाक्टर साहब की ही राय से तुड़वाया गया।
"उससे ऊपर दो कमरे बढ़वा लो", उन्होंने राय दी और वह मानी गयी। फजन एफ. ए.

में साइंस लेने को तैयार न था, डाक्टर साहब जूता लेकर पिल पड़े मामला ठंडा हो गया। ़फरीदा, मियाँ से लड़कर घर आन बैठी, डाक्टर साहब के पास उसका पति पहुँचा और दूसरे दिन उनकी मँझली बहू शीला जब ब्याह कर आयी तो आया का झगड़ा भी समाप्त हो गया। बेचारी अस्पताल से भागी आयी। फीस तो दूर की चीज है ऊपर से छठे दिन कुर्ता-टोपी लेकर आयी।

पर आज जब छब्बा लड़कर आये तो इनकी ऐसी आवभगत हुई जैसे मैदान मार कर आया हो कोई बहादुर मर्द। सभी ने इसकी बहादुरी का वर्णन जानना चाहा और बहुत-सी जवानों के सामने अम्मा गँगी बनी रहीं। आज से नहीं, वह 15 अगस्त से जब डाक्टर साहब के घर पर तिरंगा झंडा लहराया और अपने घर पर लीग का झंडा टँगा था उसी दिन से उनकी जुबान को चुप लग गयी थी। इन झंडों के बीच एक लम्बी खाई का निर्माण हो चुका था। जिसकी भयानक गहराई अपनी दुखी आँखों से देख-देखकर सिहर जातीं अम्मा। फिर शरणार्थियों की संख्या बढ़ने लगी। बड़ी बहू के मौके वाले बहावलपुर से माल लुटाकर और किसी तरह जान बचाकर जब आये तो खाई की चौड़ाई और बढ़ गयी। फिर रावलपिंडी से जब निर्मला के ससुराल वाले मूर्च्छित अवस्था में आये तो इस खाई में अजगर फुँफकारें मारने लगे। जब छोटी भाभी ने अपने बच्चे का पेट दिखाने को भेजा तो शीला भाभी ने नौकर को भगा दिया।

और किसी ने भी इस मामले पर वाद-विवाद नहीं छेड़ा, सारे घर के लोग एकदम रुक गये। बड़ी भाभी तो अपने हिस्टीरिया के दौरे भूलकर लपाझप कपड़े बाँधने लगीं। "मेरे ट्रंक को हाथ न लगाना" अम्मा की ़जुबान अन्त में खुली और सबके सब हक्का-बक्का रह गये।

"क्या आप नहीं जाएँगी।" बड़े भइया तैश से बोले।

"नौजमोई मैं सिन्धों में मरने जाऊँ। अल्लाह मारियाँ बुर्के-पाजामे फड़काती फिरे हैं।"

"तो सँझले के पास ढाके चली जाएँ।"

"ऐ वो ढाके काहे को जाएँगी। वहाँ बंगाली की तरह चावल हाथों से लसेड़-लसेड़ कर खाएँगी।" सँझली की सास ममानी बी ने ताना दिया।

"तो रावलपिण्डी चलो फरीदा के यहाँ", खाला बोलीं।
"तौबा मेरी, अल्लाह पाक पंजाबियों के हाथों मिट्टी गन्दी न कराये। मिट गये दोंजखियों (नरक वासी) की तो जुबान बोले हैं।" आज तो मेरी कम बोलने वाली अम्मा पटापट बोलीं।
"ऐ बुआ तुम्हारी तो वही मसल हो गयी कि ऊँचे के नीचे, भेर लिये कि पेड़ तले बैठी तेरा घर न जानूँ। ऐ बी यह कट्टू गिलहरी की तरह गमजह मस्तियाँ कि राजा ने बुलाया है। लो भई झमझम करता हाथी भेजा। चक-चक ये तो काला-काला कि घोड़ा भेजा, चक-चक ये तो लातें झाड़े कि..."
वातावरण विषैला-सा था इसके बावजूद कहकहा पड़ गया। मेरी अम्मा का मुँह जरा-सा फूल गया।
"क्या बच्चों की-सी बातें हो रही हैं।" नेशनल गार्ड के सरदार अली बोले।
"जिनका सर न पैर, क्या इरादा है यहाँ रहकर कट मरने का।"
"तुम लोग जाओ अब मैं कहाँ जाऊँगी अपनी अन्तिम घड़ी में।"
"तो अन्तिम घड़ियों में कांफिरों से गत बनवाओगी?" खाला बी पोटलियों को गिनती जाती थीं। और पोटलियों में सोने-चाँदी के गहनों से लकर करहडियों का मंजन, सूखी मेथी, और मुल्तानी मिट्टी तक थी। इन चीजों को वो ऐसे कलेजे से लगा कर ले जा रही थीं मानो पाकिस्तान का एस्ट्रलिंग बैलेंस कम हो जाएगा। तीन बार बड़े भाई ने जलकर इनकी पुराने रोहड़ की पोटलियाँ फेकीं। पर वह ऐसी चिंघाड़ीं मानो अगर उनकी यह दौलत न गयी तो पाकिस्तान गरीब रह जाएगा। फिर मजबूर होकर बच्चों की मौत में डूबी हुई गदेलों की रुई की पोटलियाँ बाँधनी पड़ीं। बर्तन बोरों में भरे गये। पलंगों के पाचे-पट्टियाँ खोलकर झलंगों में बाँधी गयीं, और देखते ही देखते जमा जमाया घर टेढ़ी-मेढ़ी गठरियों और बोगचों में परिवर्तित हो गया। अब तो सामानों के पैर लग गये हैं। थोड़ा सुस्ताने को बैठा है अभी फिर उठकर नाचने लगेगा।
पर अम्मा का ट्रंक ज्यों का ज्यों रखा रहा।
"आपा का इरादा यहीं मरने का है तो इन्हें कौन रोक सकता है", भाई साहब ने अन्त में

कहा।
और मेरी मासूम सूरत वाली अम्मा भटकती आँखों से आसमान को तकती रहीं, जैसे वो स्वयं अपने आपसे पूछती हों, कौन मार डालेगा? और कब?
"अम्मा तो सठिया गयी हैं। इस उम्र में इनकी बुध्दि ठिकाने पर नहीं है" मँझला भाई कान में खुसपुसाया।
"क्या मालूम इन्हें कि कांफिरों ने मासूमों पर तो और भी अत्याचार किया है। अपना देश होगा तो जान-माल की तो सुरक्षा होगी।"
अगर मेरी कम बोलने वाली अम्मा की जुबान तेंज होती तो वह जरूर कहतीं, 'अपना देश है किस चिड़िया का नाम? लोगो! वह है कहाँ अपना देश ?जिस मिट्टी में जन्म लिया, जिसमें लोट-पोट कर पले-बढ़े वही अपना देश न हुआ तो फिर जहाँ चार दिन को जाकर बस जाओ वह कैसे अपना देश हो जाएगा? और फिर कौन जाने वहाँ से भी कोई निकाल दे। कहे जाओ नया देश बसाओ। अब यहाँ सुबह का चिराग बनी बैठी हूँ। एक नन्हा-सा झोंका आया और देश का झगड़ा समाप्त और ये देश उजड़ जाने और बसाने का खेल मधुर भी तो नहीं। एक दिन था मुंगल अपना देश छोड़कर नया देश बसाने आये थे। आज फिर चलो देश बसाने, देश न हुआ पैर की जूती हो गयी, थोड़ा कसी नहीं कि उतार फैंकी और फिर दूसरी पहन ली'मगर अम्मा चुप रहीं। अब इनका चेहरा पहले से अधिक थका हुआ मालूम होने लगा। जैसे वह सैकड़ों वर्षों से देश की खोज में खाक छानने के बाद थककर बैठी हों और इस खोज में स्वयं को भी खो चुकी हों।
अम्मा अपनी जगह ऐसी जमी रहीं जैसे बड़ के पेड़ की जड़ आँधी-तूफान में खड़ी रहती है। पर जब बेटी, बहुएँ, दामाद, पोते-पोतियाँ, नवासे-नवासियाँ, पूरे का पूरा जनसमूह फाटक से निकल कर पुलिस की सुरक्षा में लारियों में सवार हुआ तो इनके दिल के टुकड़े उड़ने लगे। बेचैन नंजरों से इन्होंने खाई के उस पार बेबसी से देखा। सड़क बीच का घर इतना दूर लगा जैसे दूर पौ फटने से पहले गर्दिश में बादल का टुकड़ा। रूपचन्द जी का बरामदा सुनसान पड़ा था। दो-एक बच्चे बाहर निकले मगर हाथ पकड़ कर

वापस घसीट लिए गये पर अम्मा की आँसू भरी आँखों ने इनकी आँखों को देख लिया। जो दरवांजे की झिरियों के पीछे गीली हो रही थीं। जब लारियाँ धूल उड़ातीं पूरे घर को ले उड़ीं तो एक बायीं ओर की मुर्दा लज्जा ने साँस ली। दरवांजा खुला और बोझिल चालों से रूपचन्द जी चोरों की तरह सामने के खाली ढनढन घर को ताकने निकले और थोड़ी देर तक धूल के गुबार में बिछड़ी सूरतों को ढूँढ़ते रहे और फिर इनकी असफल निगाहें अपराधी शैली में, इस उजड़े दरवांजे से भटकती हुई वापस धरती में धँस गयीं।

जब सारी उम्र की पूँजी को ख़ुदा के हवाले करके अम्मा ढनढार आँगन में आकर खड़ी हुईं तो इनका बूढ़ा दिल नन्हें बच्चे की तरह सहम कर मुर्झा गया जैसे चारों ओर से भूत आकर इन्हें दबोच लेंगे। चकराकर इन्होंने खम्बों का सहारा लिया। सामने नंजर उठी तो कलेजा मुँह को आ गया। यही तो वह कमरा था जिसे दूल्हे की प्यार भरी गोद में लाँघकर आयी थीं। यहीं तो कमसिन डरभरी आँखों वाली भोली-सी दुल्हन के चाँद से चेहरे पर से घूँघट उठा था और जिसने जीवनभर की गुलामी लिख दी थी। वह सामने कोने वाले कमरे में पहली बेटी पैदा हुई थी और बड़ी बेटी की याद एकदम से कौंध बनकर कलेजे में समा गयी। वहाँ कोने में उसका नाल गड़ा था। एक नहीं दस नाल गड़े थे। और दस आत्माओं ने यहीं पहली साँस ली थी। दस मांस व हड्डी की मूर्तियों ने,दस इनसानों ने इसी पवित्र कमरे में जन्म लिया था। इस पवित्र कोख से जिसे आज वो छोड़कर चले गये थे। जैसे वह पुरानी कजली थी जिसे काँटों में उलझा कर वो सब चले गये। अमन व शान्ति की खोज में, रुपये के चार सेर गेहँ के पीछे और वह नन्हीं-नन्हीं हस्तियों की प्यारी-प्यारी आ-गु-आ-गु से कमरा अब तक गूँज रहा था। लपक कर वह कमरे में गोद फैलाकर दौड़ गयीं पर इनकी गोद खाली रही। वह गोद जिसे सुहागिनें पवित्रता से छूकर हाथ कोख को लगाती थीं आज खाली थी। कमरा खाली पड़ा भायँ-भायँ कर रहा था। वहशत से वह लौट गयीं। मगर छूटे हुए कल्पना के कदम न लौटा सकीं। वह दूसरे कमरे में लड़खड़ा गयीं। यहीं तो जीवनसाथी ने पचास वर्ष गुजार चुकने के बाद मुँह मोड़ लिया था। यहीं दरवांजे के

सामने कफन में लिपटी लाश रखी गयी थी, सारा परिवार घेरे खड़ा था। किस्मत वाले थे वो जो अपने प्यारों की गोद में सिधारे पर जीवनसाथी को छोड़ गये। जो आज बेकफन की लाश की तरह लावारिस पड़ गयी। पाँवों ने उत्तर दिया और वहीं बैठ गयीं जहाँ मीत के सिरहाने कई वर्ष इन कँपकँपाते हाथों ने चिराग जलाया था। पर आज चिराग में तेल न था और बत्ती भी समाप्त हो चुकी थी।
सामने रूपचन्द अपने बरामदे में तेजी से टहल रहे थे। गालियाँ दे रहे थे अपने बीवी-बच्चों को, नौकरों को, सरकार को और अपने सामने फैली वीरान सड़क को, ईंट-पत्थर को, चाकू-छूरी को, यहाँ तक कि पूरा विश्व इनकी गालियों की बमबारी के आगे सहम गया था। और विशेष इस खाली घर को जो सड़क के उस पार खड़ा इनको मुँह चिढ़ा रहा था। जैसे स्वयं इन्होंने अपने हाथों से इसकी ईंट से ईंट बजा दी हो। वह कोई चीज अपने मस्तिष्क में से झटक देना चाहते थे। पूरी शक्ति की मदद से नोंचकर फेंक देना चाहते थे। मगर असफल होकर झुँझला बैठे। कपट की जड़ों की तरह जो चीज इनके अस्तित्व में जम चुकी थी वह उसे पूरी शक्ति से खींच रहे थे मगर साथ-साथ जैसे इनका मांस खिंचा चला आता हो, वह कराह कर छोड़ देते थे। फिर एकाएक इनकी गालियाँ बन्द हो गयी। टहल थम गयी और वो मोटर में बैठकर चल दिये।
रात हुई। जब गली के नुक्कड़ पर सन्नाटा छा गया तो पिछले दरवांजे से रूपचन्द जी की पत्नी दो परोसी हुई थालियाँ ऊपर नीचे रखे चोरों की तरह अन्दर आयीं। दोनों बूढ़ी औरतें चुप एक-दूसरे के आमने-सामने बैठ गयी। जुबानें बन्द रहीं पर आँखें सब कुछ कह रही थीं। दोनों थालियों का खाना ज्यूँ का त्यूँ रखा था। औरतें जब किसी की चुगली करती हैं तो इनकी जुबानें कैंचियों की तरह निकल पड़ती हैं। पर जहाँ भावनाओं ने हमला किया और मुँह में ताले पड़ गये।
रात भर न जाने कितनी देर तक यादें अकेला पाकर अचानक हमला करती रहीं। न जाने रास्ते ही में कहीं सब न खत्म हो जाएँ। आजकल तो पूरी-पूरी रेलें कट रही हैं। पचास वर्ष खून से सींचकर खेती तैयार की थी और आज वह देश निकाले नई धरती की तलाश में जैसी-तैसी हालत में चल पड़े थे, कौन जाने नई धरती इन पौधों को रास

आये न आये, कुम्हला तो न जाएँगे ये गरीबुल वतन पौधे। छोटी बहू का तो पूरा महीना है न जाने किस जंगल में जच्चा घर बने। घर-परिवार, नौकरी, व्यापार सब कुछ छोड़ के चल पड़े। नए देश में। चील-कौओं ने कुछ छोड़ा भी होगा। या मुँह तकते ही लौट आएँगे और जो लौटकर आएँ तो फिर से जड़ें पकड़ने का मौका मिलेगा भी या नहींकौन जाने यह बुढ़िया उनके लौट आने तक जीवित रहेगी भी कि नहीं।
अम्मा पत्थर की मूरत बन गयी थीं। नींद कहाँ, सारी रात बूढ़ा शरीर बेटियों की कटी-फटी लाशें, नौजवान बहुओं का नंगा जुलूस और पोतों-नवासों के चिथड़े उड़ते देख कर थर्राता रहा। न जाने कब झपकी ने हमला कर दिया। ऐसा प्रतीत हुआ दरवांजे पर दुनिया भर का हंगामा हो रहा है। जान प्यारी न सही,पर बिना तेल का दीया भी बुझते समय काँप उठता है और सीधी-सादी मौत ही क्या कम निर्दयी होती है जो ऊपर से वह इनसान का भूत बनकर सामने आये। सुना है बूढ़ियों तक को बाल पकड़ कर सड़कों पर घसीटते हैं। यहाँ तक कि खाल छिलकर हड्डियाँ तक झलक आती हैं और फिर वही दुनिया के अंजाब प्रकट होते हैं, जिनको सोचकर ही नर्क के फरिश्ते पीले पड़ जाएँ।
दस्तक की घनगरज बढ़ती जा रही थी। यमराज को जल्दी पड़ी थी और फिर अपने आप सारी चिटखनी खुलने लगीं, बत्तियाँ जल उठीं जैसे दूर कुएँ की तलहटी से किसी की आवांज आयी। शायद बड़ा लड़का पुकार रहा थानहीं ये तो छोटे और मँझले की आवांज थी दूसरी दुनिया के ध्वस्त कोने से। तो मिल गया सबको अपना देश? इतनी जल्दी? सँझला, उसके पीछे छोटा, साफ तो खड़े थे, गोदों में बच्चों को उठाए हुए बहुएँ। फिर एकदम से सारा घर जीवित हो उठा, सारी आत्माएँ जाग उठीं और दुखियारी माँ के आस-पास जमा होने लगीं। छोटे-बड़े हाथ प्यार से छूने लगे। सूखे होंठों में एकाएक कोंपलें फूट निकलीं। खुशी से सारे होश तितर-बितर होकर अँधेरे में भँवर डालते डूब गये।
जब आँख खुली तो रगों पर जानी-पहचानी उँगलियाँ रेंग रही थीं।
"अरे भाभी मुझे वैसे ही बुला लिया करो, चला आऊँगा। ये ढोंग काहे को रचाती हो",

रूपचन्द जी पर्दे के पीछे से कह रहे थे।
"और भाभी आज तो फीस दिलवा दो। देखो तुम्हारे नालायक लड़कों को लोनी जंक्शन से पकड़ लाया हूँ। भागते जाते थे बदमाश कहीं के। पुलिस सुपरिंटेंडेंट का भी विश्वास नहीं करते थे।"
फिर बूढ़े होंठो में कोंपलें फूट निकलीं। वह उठकर बैठ गयीं। थोड़ी देर चुप रहीं। फिर दो गर्म-गर्म मोती लुढ़क कर रूपचन्द जी के झुर्रियों भरे हाथ पर गिर पड़े।

(अनुवाद: नन्द किशोर विक्रम)